धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

मूल्य : 45 रुपये
अंक 135
आश्विन,
2080 वि. सं.

पितृ-भक्ति विशेषांक

Facsimile copy of the particular article

पितरों का श्राद्ध और तर्पण क्यों है आवश्यक?

चार दिनों के प्रस्तावित श्राद्ध की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

आचार्य किशोर कुणाल

दलित-देवो भव, Ayodhya Revisited आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता।

विशेष परिचय हेतु : https://www.kishorekunal.com/

लेखक ने प्रमाण के साथ सिद्ध किया है कि प्राचीन उपनिषदों में वर्णित आत्मतत्त्व एवं पुनर्जन्म की अवधारणा के आलोक में श्राद्ध की कोई अनिवार्यता नहीं है, फिर भी श्राद्धकर्म अवश्य होना चाहिए। लेखक ने प्रचलित पद्धति और प्रेतत्वविमुक्ति की अवधारणा को नकारते हुए चार दिनों की एक श्राद्ध-पद्धति ऐसे लोगों के लिए बनायी है, जो लोग समय के अभाव की बात कहकर आर्यसमाज की पद्धति से शान्ति-मन्त्रों से हवन कराकर उसे ही वैदिक-श्राद्ध समझ लेते हैं। लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि जो लोग प्रचलित पद्धति से 12 दिनों का श्राद्ध करते हैं, *"उनकी आस्था एवं विश्वास पर हम आघात नहीं करना चाहते; किन्तु आज अधिकतर लोगों के पास या तो समयाभाव है या गाय की पूँछ पकड़ कर कल्पित वैतरणी पार करने में अनास्था। अतः ये आर्य-समाजी पद्धति से तीन दिनों में श्राद्ध कर लेते हैं और तीसरे दिन कुछ वैदिक मन्त्रों का पाठ करा कर और कुछ हवन कर श्राद्ध की इतिश्री कर लेते हैं।"* ऐसे लोगों के लिए लिखी गयी यह पद्धति महावीर मन्दिर प्रकाशन से शीघ्र प्रकाश्य है। इसी पुस्तक की सैद्धान्तिक भूमिका यहाँ विमर्श हेतु प्रस्तुत है।

(1) विषय प्रवेश

यह शाश्वत सत्य है कि जिसने जन्म लिया है, उसको मृत्यु का सामना करना ही पड़ेगा। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

—गीता : 2.27

अर्थात् जो जन्मा है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मरा है उसका जन्म निश्चित है। यह ध्रुव है, अपरिहार्य है; अतः जो अपरिहार्य है, जिसका टालना सम्भव नहीं है, उसके लिए चिन्ता करना उचित नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मृत्यु के बारे में एक और सिद्धान्त समझाया— जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्रों का धारण करता है, वैसे ही आत्मा इस देह-रूपी पुराने वस्त्र का त्याग कर नवीन जन्म का नूतन परिधान पहन लेती है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता : 2.22

कठोपनिषद् में नचिकेता ने यम से तीसरा वर माँगने के क्रम में यह प्रश्न किया था— 'मृत लोगों के बारे में यह संशय है कि कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा रहती है और कुछ कहते हैं कि नहीं रहती।

अतः आपसे उपदेश ग्रहण कर मैं इसे भली भाँति समझ लूँ कि वास्तविक स्थिति क्या होती है, यह तीसरा वर मैं माँगता हूँ।'

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽ-
स्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः॥[1]

यमराज ने नचिकेता को समझाया था—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥[2]

यह चेतन स्वरूप आत्मा (विपश्चित्) न उत्पन्न होती है, न नष्ट होती है। यह नहीं जाना जा सकता है कि यह कहाँ से आयी और क्या बनी। यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, प्राचीन है और शरीर के मारे जाने पर भी यह मारी नहीं जाती।

यम ने नचिकेता को आगे समझाया—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥[3]

जिसका जैसा कर्म होता है और जिसका जैसा भाव प्राप्त होता है, वैसे ही प्राणी योनियों में शरीर धारण करते हैं या स्थाणु-भाव को प्राप्त होते हैं।

इस शाश्वत ज्ञान को कृष्ण ने अर्जुन को इन शब्दों में समझाया है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

—गीता : 2.20

यह आत्मा न तो जन्म लेती है और न मरती है और न ही उत्पन्न होकर फिर होनेवाली है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह मारी नहीं जाती।

समग्र हिन्दू समाज गीता की इस शाश्वत वाणी से परिचित है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

—गीता : 2.23

शास्त्र इसे काटते नहीं (काट सकते नहीं), पावक इसे जला नहीं सकता, पानी भिगो नहीं सकता और हवा इसे सुखा नहीं सकती।

विश्व के प्राचीनतम ऋग्वेद में भी पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिलता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में ऋषि की प्रार्थना है—

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥

—ऋग्वेद : 10.15.1

जो पितर (पूर्वज) पृथ्वी पर हैं, वे उन्नत स्थान को प्राप्त करें। जो स्वर्ग में— उच्च स्थान में हैं, वे वहीं रहें, जो मध्यम स्थान का आश्रय करके रहे हैं, वे उच्च स्थान को— पद को प्राप्त करें और जो सोमरस पीते हैं और ऋत (सत्य) के जानकार तथा शत्रुरहित पितर हैं वे सब यज्ञकाल में हमारी रक्षा करें।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य
ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता
ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥

—ऋग्वेद :10.15.2

1 कठोपनिषद् प्रथम वल्ली 1.1.20
2 कठोपनिषद् प्रथम वल्ली 1.2.18
3 कठोपनिषद् प्रथम वल्ली 1.2.18

जो पहले उत्पन्न होकर मृत हुए, और जो अनन्तर (पीछे) उत्पन्न होकर मरे, जो पृथिवी पर राजस कार्य करके उत्तम पदों पर विराजमान हैं और जो निश्चय ही समृद्ध बान्धवों में हैं, उन सब पितरों (पूर्वजों) को आज यह नमस्कार है।

ये न पितुः पितरो ये पितामहा
य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां
तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥49॥

—अथर्ववेद : 18.2.49

जो हमारे पिता के पिता और पितामह हैं जो अन्तरिक्ष में प्रवेश कर गये हैं और जो पृथ्वी पर रहते हैं या स्वर्ग में हैं, उन सबके प्रति श्रद्धापूर्वक नमस्कार निवेदित करते हैं।

इन वैदिक मन्त्रों से स्पष्ट है कि मृत्यु के अनन्तर पूर्वज अनेक बार जन्म ग्रहण करते रहे हैं; वे वर्तमान धारणा के पितरों की तरह भटकते नहीं रहते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद में विवेचना की गयी है कि कोई जीव नये शरीर में कैसे जन्म ग्रहण करता है। यहाँ जलीय जीव जोंक का दृष्टान्त दिया गया है कि जिस प्रकार जोंक एक घास पर सरकता हुआ उसके अन्तिम छोर पर जाता है और तब उसे छोड़ने से पहले ही दूसरे घास के शिरे को पकड़ लेता है। इसी प्रकार आत्मा भी प्रथम शरीर को छोड़ने से पहले दूसरा शरीर धारण कर लेती है। यही जीवों की भी देहारम्भ विधि है—

तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वान्यमाक्रम-माक्रम्यात्मानमुपसं हरत्येवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यमाक्रममाक्रम्यात्मान-मुपसंहरति ॥3॥[4]

इसी दृष्टान्त को भागवत में भी स्पष्ट किया गया है—

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥ 38॥

हे वीर, प्राणियों की मृत्यु निश्चित है, वह आज हो या सौ वर्षों के बाद। इस शरीर के साथ उसकी मृत्यु होती है।

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥39॥

शरीर धारण करने वाला वह जब मृत्यु के बाद पंचत्व को प्राप्त करता है तब अपने कर्म के वशीभूत होकर दूसरा शरीर पाने के बाद पूर्व शरीर का त्याग करता है।

व्रजन् तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः॥ 40॥[5]

जिस प्रकार जलूका यानी जोंक एक कदम चलता है फिर ठहरता है तब फिर एक कदम आगे बढ़ाता है उसी प्रकार यह आत्मा भी कर्मगति के अनुसार चलती है। इससे स्पष्ट है कि जीव की गति उसके अपने कर्म के अनुसार अवश्य होती है।

आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का समर्थन बृहदारण्यक-उपनिषद् के उपर्युक्त उद्धरण के बाद उसकी स्थित की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

"तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वेत्येषां वा भूतानाम्।"[6]

अर्थ— जैसे सोनार, सोने का एक टुकड़ा लेकर, उससे अधिक नवीन और चमकीला रूप

4 बृहदारण्यक उपनिषद् : 4.4.3.

5 श्रीमद्भागवतपुराणम्/स्कन्धः 10/पूर्वार्धः/अध्यायः 1

6 The works of Shankaracharya, vol. 9, बृहदारण्यक उपनिषद् : IV.4.4. बालासुब्रह्मण्यम, टी.के. (सम्पादक) वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्, पृ. 610.

बनाता है, वैसे ही यह आत्मा शरीर का त्याग कर नवीन, कल्याणतर रूप प्राप्त करता है जो पितृ, गन्धर्व, दैव, प्राजापात्य, ब्रह्म या किसी प्राणी का रूप होता है।

अतः गीता, उपनिषद्—जैसे प्रामाणिक धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य मृत्यु के बाद अपने कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म प्राप्त करता है अथवा निष्काम भक्ति भाव वाले भगवान् में समाहित हो जाते हैं यानी ब्रह्मलीन हो जाते हैं। योगवासिष्ठ में वाल्मीकि कहते हैं—

आशापाशशताबद्धा वासनाभावधारिणः।
कायात् कायमुपयान्ति वृक्षात् वृक्षमिवाण्डजाः॥[7]

यानी जैसे पक्षी एक वृक्ष से उड़कर दूसरे वृक्ष पर चले जाते हैं, वैसे ही सैकड़ों आशा रूपी पाशों में बँधे हुए तथा वासनाओं को हृदय में धारण किये हुए जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में चले जाते हैं।

भरतजी द्वारा पिता दशरथ के निधन की सूचना पाकर चित्रकूट में भगवान् श्रीराम ने अनुज भरत से कहा था—

स जीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः।
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम्॥[8]

हमारे पिता ने जरा-जीर्ण मानव-शरीर का परित्याग करके दैवी शक्ति प्राप्त की है, जो ब्रह्मलोक में विहार करनेवाली है।

अपने धर्म में निधन के बाद स्वर्ग एवं नरक गमन का सिद्धान्त भी है। जो व्यक्ति सोचते हैं कि उनके माता-पिता या पूर्वज अपने पापपूर्ण कार्यों के कारण नरक गये हैं और उनके उद्धार के लिए श्राद्ध करना चाहते हैं, उन्हें भी चाहिए कि इतना पर्याप्त परोपकार उनके नाम से करें कि उनकी स्थिति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाये।

'धर्मशास्त्र का इतिहास' में प्रसिद्ध विद्वान् भारत-रत्न पाण्डुरंग वामन काणे ने लिखा है—

"A firm believer in the doctrine of Karma, punarjanma (re-incarnation) and Karma-Vipåka may find it difficult to reconcile that doctrine with the belief that by offering balls of rice to his three paternal ancestors a man brings gratification to the souls of the latter. According to the doctrine of punarjanma (as very succinctly put in Br. Up. IV 4.4 and Bhagvadgita 2.22) the spirit leaving one body enters into another and a new one. But the doctrine of offering balls of rice to three ancestors requires that the spirits of the three ancestors even after the lapse of 50 or 100 years are still capable of enjoying in an ethereal body the flavour or essence of the rice balls wafted by the wind."[9]

अर्थात् कर्म, पुनर्जन्म और कर्म-विपाक के सिद्धान्त में दृढ़ विश्वास रखनेवाले आस्तिकों को इस सिद्धान्त को सुलझाना मुश्किल हो सकता है कि उनके तीन पितरों के लिए भात के पिण्डों को अर्पित करके एक मनुष्य आत्माओं को सन्तुष्टि देता है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार (जैसा कि बहुत ही संक्षिप्त रूप में बृहदारण्यकोपनिषद् IV. 4.4 और भगवद्गीता 2.22 में रखा गया है) एक शरीर को छोड़कर आत्मा एक नवीन रूप में प्रवेश करती है। लेकिन तीन पूर्वजों को चावल का पिण्ड अर्पित करने का सिद्धान्त यह है कि 50 या 100 वर्ष की समाप्ति के बाद भी तीन पूर्वजों

7. योगवासिष्ठ : 4.43.26, श्रीकृष्णपन्तशास्त्री (सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक), अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, संवत् 2004 (1948ई.), पृ. 1927.
8. वाल्मीकि-रामायण, अयोध्याकाण्ड : 105.37, गीताप्रेस संस्करण।
9. Kane, P.V., History of Dharmasastra, Vol. IV, Bandarkar Oriental Research Institute, Pune, 1953, p. 335.

की आत्माएँ एक अभौतिक शरीर में भी वायु के द्वारा भात के पिण्डों की प्रवहमान सुगन्धि एवं स्वाद का आनंद लेने के लिए सक्षम हैं।"

जब हम उपनिषदों को वेदों का सार-तत्त्व मानते हैं और गीता को उपनिषद्-रूपी गायों से दुहा हुआ अमृत मानते हैं, तब बाद के निबन्धकारों के नियमों में उलझे रहने का कितना औचित्य है?

जब हमारी प्रचलित वैदिक, शास्त्रीय मान्यता रही है कि प्राणी मरने के तुरत बाद दूसरी योनि में अपने कर्मों के अनुसार प्रवेश कर जाता है, तब उसे प्रेत-योनि प्राप्त कैसे होगी? हाँ, कुछ प्राणी ऐसे हैं जो अपने उत्कृष्ट कर्मों के कारण मोक्ष प्राप्त करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो निकृष्ट कर्मों के कारण भूत-प्रेत योनियों को प्राप्त होते हैं; किन्तु हम शास्त्रों एवं शाश्वत हिन्दू सिद्धान्तों से भटक कर अपने पूज्य माता-पिता को प्रेत योनि में भटकाकर उन्हें कष्ट क्यों देते हैं और फिर उन्हें काल्पनिक कष्ट से छुड़ाने के लिए प्रचलित श्राद्ध क्यों करते हैं? भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता, 17.4 में कहा है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

जो सात्त्विक पुरुष हैं वे देवताओं की पूजा करते हैं, जो राजसी गुणों से भरे हैं वे यक्षों और राक्षसों की पूजा करते हैं और जो तामसिक हैं, वे प्रेतों, भूतों की पूजा करते हैं।

क्या हम अपने पूर्वजों को श्रेष्ठ पदों से विचलित कर उन्हें प्रेत-योनि में डाल देंगे और हम प्रेतों की पूजा, पिण्डदान कर तामसिक कोटि में पड़े रहेंगे? प्रामाणिक धर्मशास्त्रों का ज्ञाता ऐसा नहीं चाहेगा।

(2) श्राद्ध क्यों करना चाहिए?

अब प्रश्न उठता है कि इतना जान लेने के बाद भी क्या श्राद्ध करना चाहिए? उत्तर है कि हाँ, श्राद्ध अवश्य करना चाहिए, किन्तु प्रचलित रूप में नहीं। अपने मृत परिजनों एवं पितरों का श्राद्ध श्रद्धापूर्वक करना चाहिए; किन्तु उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए और उनके पुनर्जन्म में उनके कल्याण हेतु; न कि उन्हें प्रेत-योनि में रखकर उससे छुटकारा पाने के लिए। जिस माता-पिता ने हमारा जन्म दिया और पालन-पोषण कर वर्तमान स्थिति में लाया तथा जिन पूर्वजों के उपार्जन के कारण हमें समृद्धि मिली, उनके प्रति श्राद्ध करना हमारा कर्तव्य बनता है। विष्णु-पुराण की इस सनातन वाणी का स्मरण सदैव रखना चाहिए—

मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै।
ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथायोगमुद्धाहृतम्॥

(विष्णु पर्व, 26.28)

माता-पिता से उत्पन्न सभी सन्तानों का कर्तव्य है कि उनके ऋणों को यथायोग्य ढंग से उतार देना चाहिए।

वाल्मीकि-रामायण में भगवान् श्रीराम ने माता-पिता के महत्त्व को इन शब्दों में प्रतिपादित किया है—

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुते सदा।
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्र पित्रा च यत्कृतम्॥

–अयोध्याकाण्ड, 111. 9

माता और पिता पुत्र के प्रति जो सदैव स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता।

महाभारत में महर्षि व्यास ने माता की महिमा पृथ्वी से अधिक और पिता को आकाश से भी ऊँचा बतलाया है—

माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा॥

–वनपर्व, 313.60

अतः माता-पिता के प्रति श्रद्धांजलि देने के लिए, उनके उपकारों से उऋण होने के लिए श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। पहली बार माता या पिता के निधन के बाद और दूसरी बार उनकी पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति संजोकर।

'श्राद्ध' श्रद्धा शब्द में अण् प्रत्यय (श्रद्धाहेतुत्वेनास्त्यस्य अण्) के योग से बनता है। पाणिनि के सूत्र प्रयोजनम् (5.1.108) पर व्याख्या इस प्रकार की गयी– **"श्रद्धा प्रयोजमानस्य इति श्राद्धम्"** यानी श्रद्धा प्रयोजन है जिस कार्य का, वह श्राद्ध है।

(3) 'श्राद्ध' एवं 'पितर' शब्दों की व्याख्या

(क) पाणिनि के अनुसार **"श्रद्धा प्रयोजनमस्य इति श्राद्धम्"** (5.1.108 सूत्र 'प्रयोजनम्' पर व्याख्या) श्रद्धा प्रयोजन है जिसे 'कृत्यरत्नाकर'[10] में देवल के इस श्लोक को उद्धृत किया गया है।

(ख) प्रत्ययो धर्मकार्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता।
नास्ति ह्यश्रद्धधानस्य धर्मकृत्ये प्रयोजनम्॥

जिन धर्मकार्यों में विश्वास हो और जो श्रद्धा से अभिभूत हो, वही श्राद्ध है; न कि अश्रद्धा से किये धर्मकार्य।

(ग) हेमाद्रि ने श्राद्धसूत्र में कात्यायन के इस वचन को उद्धृत किया है–

"श्रद्धान्वितः श्राद्धं कुर्वीत शाकेनापि।"[11]

यानी श्रद्धा से सम्पन्न व्यक्ति साग से भी श्राद्ध करें।

(घ) बृहस्पति ने कहा है–

"श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते॥"[12]

यानी श्रद्धापूर्वक जो दिया जाता है, उसे श्राद्ध कहते हैं।

धर्मशास्त्रकारों ने श्राद्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है। कमलाकर भट्ट ने 'निर्णयसिन्धु' में मरीचि को उद्धृत किया है–

"श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्।"[13]

तथा हेमाद्रि द्वारा बृहस्पति को उद्धृत किया गया है–

"श्रद्धया दीयते परमाच्छ्राद्धं तेन निगद्यते।" [14]

इसका भावार्थ यह है कि श्रद्धापूर्वक जो दिया जाता है या किया जाता है, वह श्राद्ध है। यदि उसमें श्रद्धाभाव नहीं है, तो वह श्राद्ध नहीं है।

गीता के 17 वें अध्याय के द्वितीय श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥

प्राणियों की स्वाभाविकी श्रद्धा तीन प्रकार की होती है– सात्त्विकी, राजसी और तामसी।

गीता के 17वें अध्याय के चौथे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनः॥

सात्त्विक पुरुष देवताओं की पूजा करते हैं, राजसी पुरुष यक्षों और राक्षसों की पूजा करते हैं और जो तामसिक पुरुष हैं वे भूतों और प्रेतों की पूजा करते हैं।

अपने पूज्य परिजनों एवं पितरों को प्रेतकोटि में लाकर और उनकी पूजा करके हम तामसिक जनों की श्रेणी में क्यों आयें?

माता-पिता साक्षात् देव (**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव**– तैत्तिरीय उपनिषद्) माने गये हैं, अतः मृत्यु के बाद श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करके हम सात्त्विक श्रेणी में रहना पसन्द करेंगे।

10. चण्डेश्वर, म.म., कृत्यरत्नाकर, (14वीं शती) कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ (सम्पादक), (1925ई.) एसियाटिक सोसायटी कोलकाता, पृ. 16.
11 हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, प्रथम भाग, अध्याय 10, यज्ञेश्वर स्मृतिरत्न एवं कामाख्यानाथ तर्करत्न (सम्पादकद्वय), कोलकाता, 1809 शक- 1888ई., पृ. 1039.
12 बृहस्पति स्मृति, श्राद्धकाण्ड, 36. रंगास्वामी आयंगर (सम्पादक), बड़ोदा, 1941ई., पृ. 331.
13 भट्ट कमलाकर, निर्णयसिन्धु, तृतीय परिच्छेद उत्तरार्द्ध, निर्णयसागर प्रेस, 1901ई., पृ. 279
14 हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, अध्याय 4, उपर्युक्त, पृ. 153.

“श्राद्ध के विषय में एक धारणा प्रमुख है और वह प्रशंसा के योग्य भी है, वह है अपने प्रिय एवं सन्निकट सम्बन्धियों के प्रति स्नेह एवं श्रद्धा की भावना।”

महामहोपाध्याय पाण्डुरंग वामन काणे ने भी अपनी पुस्तक ‘धर्मशास्त्र का इतिहास’ में इसपर अपना सुन्दर विचार निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है—

“अब प्रश्न यह है कि बीसवीं शताब्दी में श्राद्धों के विषय में क्या किया जाना चाहिए। यह देखने में आता है कि आजकल बहुत से ब्राह्मण पञ्चमहायज्ञ (जो प्रति दिन किये जाने चाहिए) भी नहीं करते, किंतु वे अपने पितरों के लिए कम-से-कम प्रति वर्ष श्राद्ध करते हैं। निम्न बात सभी प्रकार के लोगों के लिए कही जा सकती है, और यह मध्यम मार्ग का द्योतक है। जो लोग श्राद्ध-कर्म में विश्वास रखते हैं और यह समझते हैं कि ऐसा करने से मन को शान्ति मिलती है, उन्हें कम विस्तार के साथ इसका सम्पादन करना चाहिए और मनु (3.125-126), कूर्म. (2.22.27) एव पद्म. (5.9.98) के शब्द स्मरण रखने चाहिए, जो इस प्रकार हैं— श्राद्ध में अधिक व्यय नहीं करना चाहिए, विशेषतः आमन्त्रित होनेवाले ब्राह्मणों की संख्या में। जिन लोगों का विश्वास आधुनिक भावनाओं एवं अंग्रेजी शिक्षा के कारण हिल उठा है या टूट चुका है, या जिन लोगों का कर्म एवं पुनर्जन्म में अटल विश्वास है उन्हें एक बात स्मरण रखनी है। श्राद्ध के विषय में एक धारणा प्रमुख है और वह प्रशंसा के योग्य भी है, वह है अपने प्रिय एवं सन्निकट सम्बन्धियों के प्रति स्नेह एवं श्रद्धा की भावना। वर्ष में एक दिन अपने प्रिय एवं निकट के सम्बन्धियों को स्मरण करना, मत की स्मृति में सम्बन्धियों, मित्रों एवं विद्वान् लोगों को भोजन के लिए आमन्त्रित करना, विद्वान् किन्तु धनहीन, सच्चरित्र तथा सादे जीवन एवं उच्च विचार वाले व्यक्तियों को दान देना एक अति सुन्दर आचरण है। ऐसा करना अतीत की परम्पराओं के अनुकूल होगा और उन आचरणों एवं व्यवहारों को, जो आज निर्जीव एवं निरर्थक से लगते हैं, पुनर्जीवित एवं अनुप्राणित करने के समान होगा। बहुत प्राचीन काल से हमारे विश्वास के तात्त्विक दृष्टिकोणों एव धारणाओं के अन्तर्गत ऋषियों, देवों एवं पितरों से सम्बन्धित तीन ऋणों की एक मोहक धारणा भी रही है। पितृ-ऋण पुत्रोत्पत्ति से चुकता है, क्योंकि पुत्र पितरों को पिण्ड देता है। यह एक अति व्यापक एवं विशाल धारणा है। गया में तिलयुक्त जल के तर्पण एवं पिण्डदान के समय जो कहा जाता है उससे बढ़कर कौन-सी अन्य उच्चतर भावना होगी? कहा गया है— ‘मेरे वे पितर लोग, जो प्रेतरूप में हैं, तिलयुक्त यव (जौ) के पिण्डों से तृप्त हों, और प्रत्येक वस्तु, जो ब्रह्मा से लेकर तिनके तक चर हो या अचर, हमारे द्वारा दिये गये जल से तृप्त हो।’ यदि हम इस महान् उक्ति के तात्पर्य को अपने वास्तविक आचरण में उतारें तो यह सारा विश्व एक कुटुम्ब हो जाय। अतः युगों से संचित जटिल बातों को त्यागते जाते हुए आज के हिन्दुओं को चाहिए कि वे धार्मिक कृत्यों एवं उन उत्सवों के, जिन्हें लोग भ्रामक ढंग से समझते आ रहे हैं, भीतर पड़े हुए सोने को न ठुकरायें। आज भी बहुत-से विद्वान् महानुभाव लोग

अपनी माता एवं पिता के प्रति श्रद्धा-भावना को अभिव्यक्त करते हुए श्राद्ध-कर्म करते हैं।"[15]

(4) श्राद्ध में व्यय अपनी सामर्थ्य के अनुसार किया जाना चाहिए

इस पुस्तक के लेखन एवं श्राद्ध सम्पन्न कराने की इस विधि को बताने का एक और उद्देश्य है। प्रचलित श्राद्ध में व्यय के भार से ऐसे कितने गरीब परिवार हैं, जिनपर कर्ज का ऐसा बोझ आ पड़ता है कि उससे वे निकल नहीं पाते; या तो उनकी थोड़ी बची हुई जमीन बिक जाती है या बेटी की शादी रुक जाती है या बेटे की पढ़ाई के खर्च में कटौती करनी पड़ती है।

भले ही माता-पिता के जीवन-काल में उसने एक रुपया उनके इलाज पर या उनकी इच्छापूर्ति के लिए नहीं खर्च किया होगा, किन्तु उनके मरने पर श्राद्ध की सामाजिक प्रतिष्ठा में उसे बिकना पड़ता है। किन्तु ऐसी स्थिति इसलिए आयी कि हमारे समाज के पुरोधाओं ने हमारे शास्त्रों में निर्धारित विधानों को सही रूप से हमें नहीं बतलाया। विष्णुपुराण (3.14.21-31), वराहपुराण (13.51-61) एवं अन्य धर्मशास्त्रों में श्राद्ध पर होने वाले व्यय का विधान है। यहाँ पर अत्यन्त प्रतिष्ठित विष्णुपुराण से उन दस श्लोकों को उदधृत किया जाता है जिनमें यह उल्लेख है कि श्राद्ध में व्यय कैसे किया जाना चाहिए।

पितृगीतांस्तथैवात्र श्लोकास्तांश्च शृणुष्व मे।
श्रुत्वा तथैव भवता भाव्यं तत्रदृतात्मना॥21॥

पितरों के द्वारा कही गयी पितृगीता के श्लोकों को मुझसे सुनें और सुनकर आदरपूर्वक इसी प्रकार का आचरण करें॥21॥

अपि धन्यः कुले जायेदस्माकं मतिमान्नरः।
अकुर्वत् वित्तशाठ्यो यः पिण्डान्नो निर्वपिष्यति॥22॥

क्या हमलोंगों के कुल में ऐसा विचारवाला धान्य व्यक्ति उत्पन्न होगा जो धन का घमण्ड न करता हुआ हमें पिण्ड देगा?॥22॥

रत्नं वस्त्रं महायानं सर्वभोगादिकं वसु।
विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति॥23॥

सामर्थ्य होने पर हमें लक्ष्य कर ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, विशाल वाहन, सभी प्रकार की भोग्य सामग्रियों का दान करेगा?॥23॥

अन्नेन वा यथाशक्त्या कालेऽस्मिन् भक्तिनम्रधीः।
भोजयिष्यति विप्राग्राँस्तन्मात्रविभवो नरः॥24॥

अथवा इस समय (श्राद्ध के समय) भक्ति से नम्र बुद्धि वाला अपने सामर्थ्य के अनुसार उतना ही विभव वाला व्यक्ति अन्न से ब्राह्मणश्रेष्ठों को भोजन करायेगा॥24॥

असमर्थोन्नदानस्य धान्यमात्रं स्वशक्तितः।
प्रदास्यति द्विजाग्रेभ्यः स्वल्पाल्पां वापि दक्षिणाम्॥25॥

अन्नदान करने में भी यदि वह समर्थ नहीं है तो अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणश्रेष्ठों को केवल धान दान करेगा, साथ ही, थोड़ी ही सही दक्षिणा भी देगा॥25॥

तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्तिलान्।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद् भूप! दास्यति॥26॥

हे राजन्, यदि इतना भी सामर्थ्य न हो तो उंगलि के अगले भाग से तिल (एक चुटकी भर तिल) उठाकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को देगा॥26॥

तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम्।
भक्तिनम्रः समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति॥27॥

अथवा सात या आठ तिल से युक्त जल अंजलि में लेकर भक्ति से नम्र होकर हमें लक्ष्य कर धरती पर देगा॥27॥

15 काणे, पी.बी. धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, हिन्दी अनुवाद, अर्जुन चौबे काश्यप, (अनु.), (1975ई.) द्वितीय संस्करण, पृ. 1297-98)

यतः कुतश्चित् सम्प्राप्य गोभ्यो वापि गवास्निकम्।
अभावे प्रीणयन्नस्माञ्छ्रद्धायुक्तः प्रदास्यति ॥28॥

अथवा इसके अभाव में भी जहाँ कहीं से भी गाय के एक दिन का भोजन संग्रह कर हमें प्रसन्न करते हुए श्रद्धा के साथ गाय को अर्पित करेगा ॥28॥

सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः।
सूर्यादि-लोकपालानामिदमुच्चैर्वदिष्यति ॥29॥

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥30॥

कुछ भी नहीं रहने पर वन जाकर अपनी काँख दिखाते हुए अर्थात् दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्य आदि लोकपालों के प्रति जोर से यह कहेगा— मेरे पास न तो सम्पत्ति है, न अन्न है, न ही श्राद्ध के लिए उपयोगी अन्य वस्तुएँ हैं। मैं अपने पितरों के प्रति नतमस्तक हूँ। मेरी इस भक्ति से मेरे पितर तृप्त हों, मैंने वायु के रास्ते अपने दोनो हाथ ऊपर उठा लिए हैं ॥29-30॥

इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्।
यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति पार्थिव ॥31॥

हे राजन्, इस प्रकार, सामर्थ्य एवं अभाव दोनों बातें कहनेवाली पितरों की इस वाणी के अनुसार जो कर्म करते हैं उनके द्वारा श्राद्ध सम्पन्न माना जाता है ॥31॥

यही अंश वाराहपुराण में भी 13-51 से 13-61 तक अविकल उद्धृत है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि जो आर्थिक रूप से समर्थ हैं, वे दान-दक्षिणा में जो दें, उसकी कोई सीमा नहीं है। किन्तु जो सम्पन्न नहीं हैं, गरीब हैं, उनके लिए यह विधान है कि एक मुट्ठी तिल देने से या कुछ तिलों के साथ जलांजलि देने से भी काम चल जायेगा। इसमें यह विधान भी है कि एक गाय को एक दिन चारा खिलायेगा, उससे भी पितर प्रसन्न रहेंगे। कुछ भी नहीं है तो वन जाकर अपने हाथ उठाकर 20वें श्लोक में जो भाव है उसको प्रस्तुत कर श्राद्ध सम्पन्न कर लेगा।

अतः अनुरोध है कि व्यय के बोझ से अपने एवं अपने परिवार को बचाते हुए इस पुस्तक[16] में वर्णित शास्त्रीय, वैदिक रीति से श्राद्ध सम्पन्न करायें। यह श्राद्ध -पद्धति विकल्प के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। यदि तर्कसंगत और शास्त्र-सम्मत लगे, तो इसके अनुसार श्राद्ध-विधान करायें।

(5) श्राद्ध कितने दिनों का होना चाहिए

परम्परा के अनुसार श्राद्ध 12 या 13 दिनों का होता है। प्रतिदिन महापात्र ब्राह्मण दिन में एक बार आकर पिण्डदान कराते हैं और दसवें दिन क्षौर कर्म कर शौच धारण करते हैं। ग्यारहवें दिन महापात्र ब्राह्मण द्वारा श्राद्ध कर्म निष्पन्न कराया जाता है और बारहवें दिन मुख्य श्राद्ध होता है। कहीं-कहीं इसका कुछ विधान तेरहवें दिन भी चलता है। जो लोग गरुड़-पुराण की पद्धति से इतनी लम्बी अवधि तक श्राद्ध सम्पन्न करते हैं और शय्यादान से लेकर गोदान तक उदारता दिखाते हैं, उनकी आस्था एवं विश्वास पर हम आघात नहीं करना चाहते; किन्तु आज अधिकतर लोगों के पास या तो समयाभाव है या गाय की पूँछ पकड़ कर कल्पित वैतरणी पार करने में अनास्था। अतः ये आर्य-समाजी पद्धति से तीन दिनों में श्राद्ध कर लेते हैं और तीसरे दिन कुछ वैदिक मन्त्रों का पाठ कराके और कुछ हवन कर श्राद्ध की इतिश्री कर लेते हैं। इससे श्राद्ध की खानापुरी तो हो जाती है; किन्तु शास्त्रीय विधान का भाव परिलक्षित नहीं होता है। पढ़े-लिखे लोग, शहर में रहने वाले या बाहर नौकरी या

16 आचार्य किशोर कुणाल द्वारा लिखित तथा महावीर मन्दिर द्वारा शीघ्र प्रकाश्य— 'वैदिक श्राद्धपद्धति' यहाँ अभिप्रेत है।

"ये आर्य-समाजी पद्धति से तीन दिनों में श्राद्ध कर लेते हैं और तीसरे दिन कुछ वैदिक मन्त्रों का पाठ कराके और कुछ हवन कर श्राद्ध की इतिश्री कर लेते हैं। इससे श्राद्ध की खानापुरी तो हो जाती है; किन्तु शास्त्रीय विधान का भाव परिलक्षित नहीं होता है। पढ़े-लिखे लोग, शहर में रहने वाले या बाहर नौकरी या व्यवसाय करने वाले वर्ग का बड़ा हिस्सा इस आर्यसमाजी खानापुरी का अनुसरण करता दीख रहा है; अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि ..."

व्यवसाय करने वाले वर्ग का बड़ा हिस्सा इस आर्यसमाजी खानापुरी का अनुसरण करता दीख रहा है; अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि धर्मशास्त्रों की समीक्षा कर एक तर्कसंगत और शास्त्र-सम्मत विधान का अनुसरण किया जाये।

पारस्कर गृह्यसूत्र एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का गृह्यसूत्र होने के कारण कर्मकाण्डीय ग्रन्थों में सर्वोपरि स्थान रखता है। गार्हस्थ्य-जीवन से सम्बद्ध प्रायः जितने भी कर्म हैं, उन सबका समावेश गृह्यसूत्रों में है। सूत्र-शैली में लिखित होने के कारण ये अल्पकाय होने पर भी गुणवत्ता में विपुल एवं महनीय है। पारस्कर मुनि का कात्यायन के शिष्य या भगिना माने जाते हैं।

पारस्कर-गृह्यसूत्र के तृतीय काण्ड की दशम कण्डिका में अशौच एवं श्राद्ध का विधान है। मरण (शव)— जनित अशौच का विवेचन करते हुए यहाँ यह निर्देश है कि यह अशौच तीन रातों तक रहता है। कुछ इसे दस रातों तक मानते हैं।

त्रिरात्रं शावमाशौचम् (-3.10.29)

दशरात्रमित्येके (-3.10.30)

यानी सामान्य सिद्धान्त है कि मरण से उत्पन्न अशौच तीन रात्रियों तक व्याप्त रहता है और चौथे दिन श्राद्ध का समापन किया जा सकता है। किन्तु कुछ लोग इस अशौच को दस रात्रि-पर्यन्त मानते हैं। यह विडम्बना है कि तीन रात्रि-पर्यन्त अशौच और चौथे दिन श्राद्ध सम्पन्न करने के सिद्धान्त को लोगों ने तिलांजलि दे दी और दस दिवसीय मर्यादा को ही सर्वमान्य कर दिया।

पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार हरिहर ने भी तीन रात्रि वाले अशौच का समर्थन करते हुए इसका विधान इस प्रकार बतलाया है—

यानी तीन रात का श्राद्ध होने पर प्रथम दिन तीन पिण्ड, छह अंजलि और छह पात्र देना चाहिए। द्वितीय दिन चार पिण्ड, 22 अंजलि और 22 पात्र देना चाहिए। तीसरे दिन पुनः तीन पिण्ड, 27 अंजलि और 27 पात्र देने की बात भाष्यकार हरिहर ने की है। उन्होंने एक अच्छा श्लोक भी उद्धृत किया है जिसका भावार्थ यह है कि पहले दिन तीन पिण्ड मिलाकर देना चाहिए, दूसरे दिन चार पिण्ड देना चाहिए और अस्थि संचयन करना चाहिए तथा तीसरे दिन तीन पिण्ड देने और वस्त्रादि धोने की बात कही गयी है।

विकल्प में, प्रथम दिन एक पिण्ड, एक पात्र, एक अंजलि, द्वितीय दिन चार पिण्ड, 14 अंजली, 14 पात्र और तृतीय दिन पाँच पिण्ड, 40 अंजलि और 40 पात्र का विधान किया गया है—

"त्र्यहाशौचपक्षे तु प्रथमदिने त्रीन् पिण्डान् षडञ्जलीन् षट् पात्राणि च दद्यात्। द्वितीयदिने चतुरः पिण्डान् द्वाविंशत्यञ्जलीन् द्वाविंशतिपात्राणि तृतीयदिने पुनस्त्रीन् पिण्डान् सप्तविंशत्यञ्जलीन् सप्तविंशतिपात्राणि च दद्यात्। यतः स्मरन्ति—

प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः।
द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा॥

त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादिक्षालयेत्तत इति। केचित्तु प्रथमेऽह्नि एकं पिण्डमेकमञ्जलिमेकं पात्रं द्वितीयदिने चतुरः पिण्डान् चतुर्दशाञ्जलीन् चतुर्दशपात्राणि तृतीयदिने पञ्चपिण्डान् चत्वारिंशदञ्जलीन् चत्वारिंशत्पात्राणीति मन्यन्ते। एतत्प्रेतकृत्यकरणानन्तरं न पुनः स्नायात् स्मरणाभावात्।"[17]

प्रस्तुत पुस्तक में पारस्कर-गृह्यसूत्र के वचनानुसार चार दिन का श्राद्ध-विधान प्रस्तुत किया जा रहा है। मनुस्मृति 4.217 पर मेधातिथि ने 'प्रेतान्नम्' की व्याख्या में लिखा है—

"कारुण्याच्चतुर्थीश्राद्धादिप्रवृत्तस्य यदन्नं तन्न भोज्यम्। "दशाहिकं नावमिकं चतुर्थीश्राद्ध-मष्टमी" इत्यादिरामायणवर्णितमन्यैरपि गृह्यकारैः।"[18]

इसी प्रकार कर्मकाण्ड के सबसे विशाल ग्रन्थ 'चतुवर्गचिन्तामणि' के 'श्राद्धकल्प' में हेमाद्रि ने भी लिखा है कि दसवें, नौंवे या चौथे दिन के श्राद्ध का वर्णन रामायण और गृह्यकारों ने भी किया है।

"दशाहिकं नावमिकं चतुर्थी श्राद्धं" इत्यादिना रामायणे वर्णितम्। वर्णितमन्यैरपि गृह्यकारः।"[19]

इस प्रकार चौथे दिन के श्राद्ध का विधान प्राचीन काल से प्रचलित रहा है।

17वीं सदी के ओड़िया धर्मशास्त्रकार आचार्य दिव्यसिंह महापात्र की पुस्तक 'श्राद्धदीप' में भी चार दिवसीय श्राद्ध का उल्लेख मिलता है।

चतुर्थे सप्तमे चैव नवमे दशमे तथा।
यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमिष्यते॥[20]

ग्रन्थकार दिव्यसिंह ने पृ. 6 पर इस उद्धृत श्लोक को वैशम्पायन का बतलाया है।

यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु सोमवार को दोपहर दो बजे होती है और उसका अग्नि-संस्कार उसी दिन कर दिया जाता है, तो वह सोम, मंगल और बुधवार की रात्रि तक अशौच में रहेगा और बृहस्पतिवार को श्राद्ध सम्पन्न करने का अधिकारी होगा। यह गणना कब से प्रारम्भ होगी, इस विषय पर तीन मत हैं। मध्यरात्रि से पहले मृत्यु होने पर पूर्व दिन में उसकी गणना होगी; मध्य रात्रि के बाद दूसरे दिन की गणना होगी। दूसरे मत के अनुसार दो बजे के पहले मृत्यु होने पर पूर्व दिन में तथा उसके बाद मृत्यु होने पर बाद वाले दिन में गणना होती है और तीसरे मत के अनुसार सूर्योदय के पूर्व मृत्यु होने पर गणना पूर्व दिन में होगी।

कमलाकर भट्ट कृत निर्णयसिन्धु की टीका में कश्यप को उद्धृत करते हुए लिखा है—

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः।[21]

यानी सूर्योदय के पूर्व मृत्यु की स्थिति में पूर्व दिन की गणना होनी चाहिए।

एक ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है कि व्यक्ति की मृत्यु हृदयगति रुकने या अन्य कारण से रात में ही सोते समय हो गयी हो; किन्तु दूसरों को इसकी जानकारी दूसरे दिन सूर्योदय के बाद हुई हो। किन्तु इससे अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि इस पुस्तक में श्राद्ध सम्पन्न होने की गणना अग्नि-संस्कार के दिन से ही गयी है। यदि किसी व्यक्ति का निधन सोमवार को होता है

17 पारस्करगृह्यसूत्रम्, पृ. 443.
18 मनुस्मृति, मेधातिथिव्याख्यासहित, 4.217— मृष्यन्ति ये चोपपतिं इत्यादि की व्याख्या, दबे, जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण (सम्पादक), भाग 1 (1-2 अध्याय), भारतीय विद्याभवन, 1972ई. पृ. 464.
19 हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, अध्याय 10, पूर्वोक्त, पृ. 775.
20 आचार्य दिव्यसिंह महापात्र (17वीं शती), अथानुगमनविचारः— श्लोक 6, यादवेन्द्र राय न्यायतर्कतीर्थ, एसियाटिक सोसायटी, 1977ई.,

और अग्नि-संस्कृत मंगलवार को होता है, तो श्राद्ध सम्पन्न होने का दिन मंगल, बुध एवं बृहस्पति की रात बिताकर शुक्रवार होगा। अग्नि-संस्कार की तिथि से गणना न करने पर ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि किसी महानुभाव के अग्नि-संस्कार में दो-तीन दिनों का विलम्ब होने पर श्राद्ध ही सम्यक् रूप से न हो सके। दशरथजी के निधन के बाद केकय देश से भरत को आने में आठ दिन लगे। सात रातों यात्रा के बाद वे अयोध्या पहुँचे थे—

तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि।[22]

वसिष्ठजी द्वारा भेजे गये दूतों को भी केकय देश पहुँचने में एक सप्ताह का समय लगा होगा; क्योंकि जब राजकुमार भरत रथ में आठवें दिन अयोध्या पहुँचे, तो दूतों को भी अश्व पर सवार होने के बावजूद 6-7 दिन लगे ही होंगे। रामायण के सामान्य पाठ में दूतों के रात में केकय पहुँचने का उल्लेख है कि कुछ पाठों में 'सप्तरात्रेण ते तत्र गत्वा राजगृहं वरम्' यानी सात रात व्यतीत होने पर राजा के प्रासाद में पहुँचे। बड़ौदा से सम्पादित संस्करण में भी कुछ पाठों में यह उल्लेख मिलता है। इस प्रकार राजा दशरथ की अन्त्येष्टि मृत्यु के दो सप्ताह बाद हुई। अतः श्राद्ध की तिथि मरण-दिन से नहीं, बल्कि अग्नि-संस्कार के दिन से गिननी चाहिए।

(6) 'पितर' शब्द का क्या अर्थ है?

अपने पितरों को प्रेत योनि में भटकाने का कारण भी भ्रान्ति है, अज्ञान है। 'प्रेत' शब्द में 'प्र' उपसर्ग है, 'इ' धातु है और 'क्त' (निष्ठा) प्रत्यय है। 'इ' धातु से 'गमन' का बोध होता है और 'प्रेत' शब्द का सामान्य अर्थ होता है— सदा के लिए गया व्यक्ति यानी मृत व्यक्ति; किन्तु कालान्तर में सभी मृत व्यक्तियों को अतृप्तात्मा प्रेतयोनि में डालकर और उसमें उत्पन्न कष्टों की कल्पना करके उससे छुटकारे के लिए किये जाने वाले संस्कारों को श्राद्ध से जोड़ दिया गया।

'पितर' शब्द 'पितृ' (= पिता) का प्रथमा बहुवचन है। इसका रूप इस प्रकार चलता है— पिता-पितरौ-पितरः। इसके अलावे, माता एवं पिता दोनों का द्वन्द्व समास करने पर एकशेष द्वन्द्व समास में 'पितरौ' शब्द की सिद्धि होती है जिसका अर्थ माता और पिता— दोनों होता है। कालिदास ने 'रघुवंश' के मंगलाचरण श्लोक में लिखा है—

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

यानी जगत के माता-पिता (पितरौ) पार्वती और परमेश्वर शिव को मैं नमस्कार करता हूँ। अतः माता-पिता, पितामह-पितामही, प्रपितामह-प्रपितामही ये पूर्वज बहुवचन में पितर कहलाते हैं। संस्कृत में आदर दर्शाने के लिए बहुवचन का प्रयोग एकवचन में भी होता है। अतः पितर और पिता में बहुत अन्तर नहीं है, सिवा इसके कि जो चल बसे हुए पिता या पूर्वज हैं, वे पितर हैं। वे भटकने वाले भूत-प्रेत नहीं है। पिता शब्द का मूल है— 'पितृ', जो पा धातु से निष्पन्न होता है—

पितृ- पाति रक्षत्यपत्यं यः।

जो अपत्य सन्तान की रक्षा करता है, वह पिता कहलाता है। 'पितर' शब्द सामान्यतः तीन पूर्वजों का द्योतक होता है, किन्तु उन्हें प्रेत-योनि या प्रेत-कोटि में रखना उन असंख्य पूर्वजों के साथ घोर अन्याय है, जो अपने सत्यकर्मों से श्रेष्ठ लोकों में विचरण करते हैं या श्रेष्ठ पदों पर विराजमान हैं। यहाँ पितर शब्द दिवंगत पूर्वजों का द्योतक है; प्रेतयोनि में काल्पनिक रूप से भटकते रहने वाले भूखे, प्यासे, व्याकुल प्रेतात्मा मृतकों का नहीं।

21 कृष्णभट्ट, निर्णयसिन्धु की व्याख्या, नेने, गोपालशास्त्री (सम्पादक), चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1925ई. पृ. 1863.
22 वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 71.18. गीताप्रेस संस्करण

(7) स्त्रियाँ क्या अग्निसंस्कार कर सकती हैं?

स्त्रियों को भी अग्नि-संस्कार करने का शास्त्रीय अधिकार है। पारस्कर गृह्यसूत्र में स्पष्टतः लिखा हुआ है

प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् ॥3.10.42 ॥

ताश्च तेषाम् ॥3.10.43 ॥

इस पर प्रसिद्ध भाष्यकार हरिहर ने यह भाष्य लिखा है—

(हरिहरभाष्यम्) — **'प्रत्ता...षाम्'। प्रत्तानां परिणीतानां स्त्रीणामितरे भर्त्रादयो दाहादिकर्म कुर्युः न पित्रादयः। ताश्च प्रत्ता स्त्रियः तेषां भर्त्रादीनां यथाधिकारमुदकदानादि कर्म कुर्युः ॥**

पारस्कर सूत्र का हिन्दी अनुवाद डा. जगदीशचन्द्र मिश्र[23] ने इस प्रकार किया है—

विवाहित स्त्रियों का दाह-संस्कार उनके पति करें और विवाहित स्त्रियाँ अपने पतियों का दाह-संस्कार करें।

पारस्कर गृह्य-सूत्र में तिलाञ्जलि देने के अधिकारी व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी विवचन किया गया है—

अथ कामोदकान्यृत्विक्श्वसुरसखिसम्बन्धि-मातुल-भागिनेयानाम् ॥ 3.10.46.

प्रत्तानाञ्च। 3.10.47.

अर्थात् यज्ञ कराने वाले पुरोहित, सास-श्वसुर, मित्र, रिश्तेदार, मामा-भगिना को उदक-दान करने का अधिकार है। वे दाहसंस्कार के बाद स्नान कर **"एष तिलतोयाञ्जलिस्ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्"** मन्त्र से तिल और जल दे सकते हैं।

(8) क्या श्राद्ध (अशौच) की स्थिति में नित्य सन्ध्या-वन्दन यानी पूजा-अर्चना करनी चाहिए या नहीं।

आजकल देखने में यह आता है कि परिवार या गोतिया में भी किसी के मरण के अशौच की सम्भावना रहती है, तो व्यक्ति भले ही केश-वपन (मुण्डन) न कराये, किन्तु श्राद्धकाल में पूजा-पाठ, भगवान् का स्मरण-अर्चन छोड़ देता है। यह प्रश्न विधान-वेत्ता पारस्कर के समक्ष भी प्रस्तुत हुआ था; अतः उन्होंने अपने गृह्य-सूत्र में इसका उत्तर दिया है—

नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्जम् ॥3.10.32 ॥

इसपर हरिहर ने समझाने की दृष्टि से यह भाष्य लिखा है—

"नित्यान्यावश्यकानि सन्ध्यावन्दनादीनि निवर्तेरन् अनधिकारान्न प्रवर्तन्ते। कथम्? वैतानवर्जं वितानो गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निनां विस्तारस्तत्र साध्यमग्निहोत्रादि कर्म तद्वैतानं तद्वर्जयित्वाऽन्य-न्निवर्तते इत्यर्थः।" [24]

यानी अग्निहोत्र कर्म को छोड़कर सभी नित्यकर्म यानी सन्ध्या-वन्दन इस श्राद्ध की स्थिति में भी करना चाहिए।

किन्तु कतिपय निबन्धकारों एवं धर्म-नियामकों ने भक्तों को भगवान् की पूजा-अर्चना से ही वंचित कर दिया।

***

23 पारस्कर गृह्यसूत्र, डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (सम्पादक), चौखम्भा सुरभारती वाराणसी, पुनर्मुद्रित, 2010. पृ. 436

24 पारस्कर गृह्यसूत्र, उपरिवत् पृ. 434